International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 15-07-2021, Accepted: 30-07-2021, Published: 16-08-2021
Volume 3, Issue 3, 2021, Page No. 15-18

महादेवी वर्मा के गद्य में वैज्ञानिक युग की समस्या एवं समाधान

डा. भावना पाण्डेय
हिन्दी एवं भाषा विज्ञान विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर, मध्य प्रदेश, भारत

सारांश
जिस प्रकार अच्छी तरह बुने हुए वस्त्र में उसका ताना–बाना व्यक्त नहीं होता वैसे ही हमारी सांस्कृतिक ऐकता भी प्रत्यक्ष नहीं है। एकता की राजनीतिक और सामाजिक इकाइयों की भूमिका को लेकर वे कहती हैं कि ''युगों के उपरांत हमारा देश एक राजनीतिक इकाई बन सका है, परंतु आज यदि हम इसे सांस्कृतिक इकाई का पर्याय मान लें, तो यह हमारी भ्रांति ही होगी। कारण स्पष्ट है। राजनीतिक इकाई जीवन की बाह्य व्यवस्था से संबंध रखती है, अतः वह बल से भी बनाई जा सकती है। परंतु सांस्कृतिक इकाई आत्मा की उसक मुक्तावस्था में बनती है, जिसमें मनुश्य भेदों से अभेद की ओर, अनेकता से ऐकता की ओर चलता है।''

मूल शब्दः सांस्कृतिक इकाई, समष्टिगत चेतना, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, तथ्यान्वेषण, व्यष्टि, समष्टि, अंतः सलिला

प्रस्तावना

आज के इस वैज्ञानिक युग में जहाँ तथ्य और तर्क महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं वहीं भावनाएँ और संवेदना गौण होती दिखाई दे रही है। इसी तथ्य के आधार पर महादेवी जी का यह निबंध हमारी सांस्कृतिक विशेषताओं का महत्व बताता है। जिसमें उन्होंने हमारी संस्कृति की व्यक्ति और समाज से निकटता को बताते हुए कहा है कि किसी भी समीपता के दो परिणाम होते हैं पहली समीपता जो आत्मीयता के कारण होती है उसमें किसी के प्रति त्याग भी भावना महत्वपूर्ण होती है जबकि दुराभाव से प्रेरित समीपता में दूसरे के बचाव के समस्त साधन नष्ट कर देने की दुर्भावना होती है। वे उदाहरण देते हुए कहती हैं कि ''हमारे मस्तक पर आकाश में उमड़ता हुआ बादल और उमड़ता हुआ बमवर्षक यान दोनों ही हमारे समीप के जायेंगे, परंतु स्थिति एक होने पर भी परिणाम विरुद्ध ही रहेंगे। जिनके साथ मन शंकारहित नहीं हो सकता, उनकी निकटता संघर्ष की जननी है। इसी से आज के युग में मनुष्य पास है, किंतु मनुष्य का शंकाकुल मन पास आने वालों से दूर होता जा रहा है। स्वस्थ आदान–प्रदान के लिए मनों की निकटता पहली आवश्यकता है।'' इसीलिए हमारे देश के अतीत के महामनाओं ने हमारी समष्टिगत चेतना को व्यक्ति मात्र के अपनेपन से गूँथ कर इतने पास रख दिया कि वह व्यष्टि में भी समष्टि का सामीप्य प्रदान करती थी। महादेवी जी कहती हैं कि हमारे अतीत के चिंतकों ने हमारी एकता के सूत्र को भंग ने कर देने की आशंका से इसे बहुत मजबूत बनाने का भरसक प्रयास किया और देश के कोने–कोने में बिखरे जीवन को निकट लाने के साधनों की खोज की। उन्होंने ऐसे तीर्थ खोजे जिनकी छाया में वर्ण, देश, भाषा आदि की सीमाएँ समाप्त हो जाती हैं। उन्होंने ऐसी यात्राएँ की तो देश के किसी खंड को अपरिचित नहीं रहने देतीं।

भाषा का प्रश्न
संकल्पिता (1969)

भाषा को मानव की एक अन्यतम उपलब्धि स्वीकार करने वाली महादेवी जी का यह निबंध भाषा को अंधकार में दीपशिखा की भाँति प्रकाशित कर मार्ग दिखाने वाला सिद्ध करता है। भाषा की उत्पत्ति का रहस्य बताते हुए महादेवी जी उसकी विभिन्न इकाइयों विशेषतः सार्थक इकाइयों पर सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथ्यान्वेषण करते हुए भाषा विज्ञान को स्पर्श करती हुई प्रतीत होती हैं। वे लिखती हैं कि ''भाषा में स्वर, अर्थ, रूप, भाव तथा बोध का ऐसा समन्वय रहता है, जो मानवीय अभिव्यक्ति को व्यष्टि से समष्टि तक विस्तार देने में समर्थ है। मानव व्यक्तित्व के समान ही उसकी वाणी का निर्माण दोहरा होता है।''

वे मानती हैं कि भाषा सीखना तथा भाषा जीना एक–दूसरे से भिन्न हैं। ध्वनि का ज्ञान आत्मानुभव से और उसके अर्थ का ज्ञान बुद्धि तत्व से मिलता है। वे कहती हैं कि प्रत्येक भाषा एक त्रिवेणी की तरह होती है जिसकी पहली धारा व्यवहारिक जीवन के आदान–प्रदान को सहज बनाती है, दूसरी धारा मानव बुद्धि और हृदय की समृद्धि को संप्रेषणीय बनाती है तथा तीसरी धारा एक अंतःसलिला के समान है जो किसी भेदातीत स्थिति की संयोजिका है। उनका मानना है कि समस्त भारतीय भाषाओं ने अपने विभिन्न उपादानों से राष्ट्र जीवन को समृद्ध ही किया है।

मानव विकासः परंपरा के संदर्भ में

परंपरा के परिप्रेक्ष्य में मानव के क्रमबद्ध विकास के अभ्यंतर और बाह्य दोनों पक्षों के महत्व पर विमर्श प्रस्तुत करता महादेवी जी का यह निबंध मनुष्य को कर्म, दर्शन, चिंतन, आस्था आदि की दृष्टि से अतीत का विश्लेषण और भविष्य का मार्ग बताता है। इस संदर्भ में स्वयं महादेवी जी लिखती हैं कि ''जब विचार, दर्शन, संवेदन तथा क्रिया एक विशेष क्रम के साथ आवर्तित संवर्तित होते हैं, तभी उनसे सामान्य निष्कर्ष रूपरेखा पाते हैं।''

महादेवी जी मानती हैं कि प्रत्येक समुदाय अपने एक भिन्न परिवेश और परिस्थिति में अपना विकास करता है और उसकी अधिकांश परंपराएँ एवं मूल्य खुद के द्वारा बनाये हुए होते हैं किंतु ये सभी नियम एवं परंपराएँ मनुष्येतर प्राणी के लिए नहीं होते उनके समस्त नियम विधान आदि प्रकृति द्वारा संचालित हैं। उनके अनुसार पशु–पक्षी जगत् नैसर्गिक सहज चेतना से ही अपनी कार्य क्षमता ग्रहण करता है। महादेवी जी मनुष्य के स्वयं के द्वारा निर्मित इन नियमों को बनाने की शक्ति को मनुष्य की चुनाव की शक्ति कहती हैं। वे मानव विकास के लेखा–जोखा को कई पीढ़ियों द्वारा संचित ज्ञानकोश का ऐसा परिणाम मानती हैं जिसके माध्यम से मानव जीवन ऊर्ध्व से ऊर्ध्वतर, सुंदर से सुंदरतर बन सकता है।

संस्कृति और प्राकृतिक परिवेश

भारतीय संस्कृति की ही तरह प्रकृति का भी एक निश्चित विकास क्रम है जिसे जैवी धर्म कहते हुए महादेवी जी इन दोनों के द्वारा किये जाने वाले सृजन कर्म का लेखा–जोखा प्रस्तुत करने का प्रयास अपने इस निबंध में करती हैं। वे प्रकृति और जीव मात्र के संबंध की अनिवार्यता सिद्ध करते हुए लिखती हैं कि ''प्राकृतिक परिवेश के साथ जैवी प्रकृति की स्थिति धरती और बीज की स्थिति है, जो एक का, दूसरे रूप में परिवर्तन है और जिसमें आदि से अंत तक बीज को अपने नित्य पोषण–परिवर्द्धन के लिए ही नहीं, अपनी स्थिति के लिए भी धरती की आवश्यकता रहती है।''

वे इसी प्रकार का संबंध मानव जीवन में जड़ और चेतन का मानती हैं। वे स्वीकार करती हैं कि मानव जीवन इन दोनों का ही स्थायी संधिपत्र है। इतना ही नहीं मानव जीवन में पार्थिवता वे वलयित चेतना को विशेषाधिकार भी प्राप्त हैं। वे बताती हैं कि प्रकृति ने मानव के निर्माण के लिए अपनी जैवी सृष्टि से अनंत प्रयोग किए हैं जिसके बदले में मानव समुदाय आज तक उसे देव तुल्य मानता आया है।

भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि

भारतीय साहित्य, समाज और संस्कृति पर अपना विशेष अध्ययन और अनुसंधान प्रस्तुत करने वाली विदुषी महादेवी वर्मा जी का यह निबंध भारतीय संस्कृति के गौरवमय अतीत पर प्रकाश डालता हुआ उसकी विशेशताओं को पाठक के समक्ष प्रत्यक्ष करने में सर्वथा सक्षम है। वे भारतीय संस्कृति की उपलब्धियों को मानवजाति का उत्तराधिकार मानती हैं। सरस्वतीपुत्र लोमान्यतिलक ने भारतीय संस्कृति के प्रादुर्भाव की थाह पाने की कोशिश की थी। उनके अनुसंधान का उल्लेख करते हुए महादेवी जी बताती हैं कि वे खगोलीय ज्योतिश के सिद्धांतों के आधार पर वेदों और ब्राह्मणग्रंथों के सही रचनाकाल को निर्धारित करने में सर्वाधिक सफल रहे हैं।

संसार के किसी अन्य पर्वत को मानव की संस्कृति, काव्य, दर्शन, धर्म आदि के निर्माण में ऐसा महत्व नहीं मिला है, जैसा हमारे हिमालय को प्राप्त है। वह मानों भारत की संश्लिष्ट विशेषताओं का ऐसा अखण्ड विग्रह है, जिस पर काल कोई खंरोच नहीं लगा सका। वस्तुतः हिमालय भारतीय संस्कृति के हर नए चरण का पुरातन साथी रहा है। भारतीय जीवन उसकी उजली छाया में पल कर सुंदर हुआ है, उसकी शुभ्र ऊँचाई छूने के लिए उन्नत बना है और उसके हृदय से प्रवाहित नदियों में धुलकर निखरा है।''

अथर्ववेद के सूत्रवाक्य 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।' के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना की भारतीय जनमानस के प्रत्येक कण में वैदिक काल से ही संपृक्ति की खोज करने वाले मनीषियों की द्वारा उल्लखित गौरवमयी सनातन संस्कृति के साहित्यीकरण में कालिदास आदि के योगदान का उल्लेख करते हुए महादेवी जी ने हिमालय के साथ–साथ कैलाश, मानसरोवर, राजस्थान को अर्वुद, विन्ध्य और सतपुड़ा की श्रेणियों, दक्षिण के सहाद्रि, मलय आदि का भारतीय संस्कृति के महत्व के परिवप्रेक्ष में उल्लेख किया है। वे वेदों में पूजित नदियों एवं सागरों के महत्व का रेखांकन भी नहीं भूलतीं। उदाहरण स्वरूप उनका यह कथन उल्लखित किया जा सकता है– ''भारत नदियों की दृष्टि से भी बहुत समृद्ध रहा है। उसकी संस्कृति का आरंभ और विकास नदियों के तट पर ही हुआ है, अतः उनके प्रति भक्तिभाव उसकी संस्कृति की विशेषता बन गया है। वैदिक वाङ्मय में अनेक नदियों के नाम आये हैं जिनमें से कुछ के नामों में परिवर्तन हो गया है और कुछ अब अफगानिस्तान की सीमा क्षेत्र में हैं। परंतु अधिकांश नदियाँ हमारी जानी पहचानी ही नहीं, शरीर की रक्तवाहिनी शिराओं के समान, जीवन और संस्कृति की वाहिनी भी हैं। पुराण तो कई सौ नदियों की सूची देते हैं, परंतु ऋग्वेद में उल्लखित नदियों की संख्या भी कम नहीं है। अष्टक ऋषि (विश्वामित्र के पुत्र) सप्त आपः के अतिरिक्त अन्य 99 नदियों की चर्चा करते हैं। ''नवति नव च स्त्रोत्या स्त्रवन्ती। (निन्यानवे बहती हुई नदियाँ) ऋक्0–10–140–8

सप्त सिंधु का उल्लेख अनेक बार हुआ है।'' नदियों और सागरों की तरह ही भारतीय संस्कृति अरण्य–संस्कृति के समस्त अवयवों यथा पादप, वनस्पति, जीव–जंतु, औशधि आदि के बिना पूर्णता को प्राप्त नहीं होती। महादेवी जी इस तथ्य से भलिभाँति परिचित थीं इसीलिए उन्होंने भारतीय संस्कृति उन तत्वों का समावेश भी अपने इस निबंध में किया है वे लिखती हैं ''दार्शनिक सूक्ष्मता के व्यापक आकाश के नीचे भारतीय जीवन अरण्य–संस्कृति अथवा हलधर पृथ्वीपुत्र की संस्कृति का विकास करता रहा है। यह संस्कृति अपने कर्म–जगत की धरती से बँधी रहे, यह अनिवार्य हो जाता है।.....गौ के प्रति भारतीय की जो संस्कार–जन्य श्रद्धा है, उसका अंकुर ऋग्वेद के प्रसिद्ध गौ–सूक्त में खोजा जा सकता है।''

प्राकृतिक परिवेश और राष्ट्रीयता

राष्ट्रीय चेतना और प्राकृतिक परिवेश को परंपरागत उत्तराधिकार मानने वाली महादेवी वर्मा जी का यह निबंध राष्ट्रीयता और भारतीय संस्कृति की एकात्मता को व्यक्त करता है। वे लिखती हैं कि ''भारतराष्ट्र शब्द में भारतभूमि उसके निवासी और उनकी संस्कृति तो अंतर्निहित रहती है ही, उक्त संज्ञा से वे विश्व की राष्ट्रसमष्टि में अपनी स्थिति का बोध भी कराते हैं ओर दूसरों को अपना परिचय भी देते हैं।''

वेदों में राष्ट्र चेतना का अनुसंधान करते हुए वे ऋग्वेद–अथर्ववेद आदि का अध्ययन करती हैं और वह सूत्र ढूँढ निकालती हैं जिसे आज की राष्ट्रीयता का द्योतक कहा जाता है। वे लिखती हैं उस काल में स्वराज्य और सभा का विशेष महत्व है। जिसमें राष्ट्रपति या गणपति का निर्वाचन और पुनर्निर्वाचन तथा आवश्यकता होने पर पदच्युतन समीतियों के द्वारा किया जाता था। वेदों की अनेकानेक सूक्तियों के माध्यम से वे राष्ट्रबोध की वैदिक परिकल्पना को प्रस्तुत करती है जिसमें प्राकृतिक परिवेश को सामानांतर रूप से स्थान दिया गया है। वे लिखती हैं कि

''किसी सामान्य भूखण्ड पर किस मानव समूह का सहजात अधिकार है, इसे जाने का पूर्णतम प्रमाण उसका साहित्य ही है। विशेषतः धरती से संस्कारगत आत्मीयता बिना हुए कवि उसके वन, नदी, पर्वत आदि के संबंध में गाता नही। वह संसार भर की प्रकृति के सौंदर्य पर मुग्ध हो सकता है, उसे छंद का परिधान दे सकता है, किंतु संस्कारगत साहचर्य के अभाव में उसे अपने व्यक्तित्व का अंग नहीं बना पाता।''

वे व्यक्ति की प्रकृति से जुड़ी आत्मीयता और तद्जन्य राष्ट्रीयता का आभास कराते हुए लिखती हैं कि स्वच्छ नगर में रहने वाले भी अपने मलिन ग्राम के विरह में दुःखी हो जाते हैं। गुलाब के बागों में बैठने वाले भी अपने गाँवों में लगे हुए नीम के करीले वृक्षों का स्मरण किये बिना नहीं रह पाते।

साहित्यकारः व्यक्ति और समष्टि

एक साहित्यकार की उत्कृष्ट व्यक्तिगत रचना किस प्रकार समूचे संसार की अभिव्यक्ति बन जाती है इस चिरजीवित सत्य को महादेवी जी का यह निबंध उजागर करता प्रतीत होता है। वे लिखती हैं कि प्रत्येक युग व देश में साहित्य की व्यापकता ही श्रेष्ठ रचनाओं की कसौटी मानी जाती है। 'स्वांतः सुखाय' वाली उक्ति को चरितार्थ करने वाले अनेक तथ्यों को महादेवी जी ने इस निबंध में पिरोते हुए ऐसी उद्भावनाएँ की हैं कि पाठक के कई प्रश्न स्वयमेव शमित होते चलते जाते हैं। संगीतकार, मूर्तिकार आदि कलाकारों द्वारा अनुभूत सत्यों को रूपकार देने के साथ तद्जन्य अनुभूति और साहित्यकार द्वारा सृजित उसकी रचना की अनुभूति से तादात्म्य स्थापित करते हुए वे लिखती हैं कि ''यह कार्य वही व्यक्ति कर सकता है, जिसे समाज के सौंदर्य और विरूपता, सुख और दुःख की व्यष्टिगत पर तीव्र अनुभूति होती है। समाज अन्य क्षेत्रों के समान इसके हाथ में कोई विधिनिषेध–शास्त्र देकर

नहीं कह सकता 'मैं तुम्हें कवि, नाटककार, कथाकार आदि के कर्तव्य पर नियुक्त करता हूँ; तुम मेरे विधान के स्थायित्व के लिए कार्य करो।'' समष्टि का प्रत्येक क्रियाकलाप साहित्यकार को प्रभावित करता है जिसके कारण उसके साहित्य में समष्टि का अनुरूपण होता है किंतु स्वयं के अनुभव और भोगे हुए सत्य के आधार पर। वे कहती हैं कि यही कारण है कि साहित्य जीवन के मूल्यों का संरक्षक, परीक्षक, संशोधक तथा आत्मीय प्रेषक हो सकता है। ऐसी स्थिति में उसकी अनुभूति समष्टि से भिन्न होने पर उसे व्यक्ति–वैचित्र्य कहा जा सकता है। अंततः वे निष्कर्ष पर पहुँचती हैं कि ''समग्र तथा संश्लिष्ट जीवन लक्ष्य होने के कारण ही साहित्य किसी एकाकी लक्ष्य से संबद्ध होकर सीमित हो जाता है, परंतु इसका यह तात्पर्य नहीं कि वह जीवन के किसी भी क्षेत्र के मूल्यों का विरोधी है।''

साहित्यकारः व्यक्तित्व और अभिव्यक्ति

व्यक्तित्व के निर्माण तथा उसकी अभिव्यक्ति के सिद्धांतों का निरूपण करते हुए महादेवी जी ने साहित्यकार के तौर पर व्यक्तित्व और उसकी अभिव्यक्ति का जो निबंध लिखा है वह साहित्यकार, उसके मन, उसके परिवेश और उसके दृष्टिकोण को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। चूँकि साहित्य जीवन की संश्लिष्ट अभिव्यक्ति होता है इसीलिए उसमें जीवन के कई स्तरों की लिप्सित स्वीकृति तथा मूल्यांकन दृष्टिगोचर होता है।

साहित्यकार की किसी भी रचना के परिप्रेक्ष्य में एक बहुत बड़ा प्रश्न हमेशा उठ खड़ा होता है कि क्या कोई रचनाकार अपने व्यक्तित्व से तटस्थ रहकर सृजन कर सकता है या नहीं? इस प्रश्न के संदर्भ में महादेवी जी ने जो समाधान प्रस्तुत किये हैं वे निश्चित तौर पर उनके स्वयं के अनुभवों से सिक्त हैं। वे लिखती हैं कि ''समाज का सामान्य सदस्य अपने जीवनोल्लास या विषाद को अन्य सदस्यों के समक्ष व्यक्त करके जिस संतोष का अनुभव करता है, साहित्यकार का आत्मतोष उससे भिन्न नहीं है। परंतु व्यक्तित्व–निरपेक्षता से यदि व्यक्तिगत संकीर्ण सीमाओं से मुक्ति अभिप्रेत है, तो रचना का, व्यक्तित्व–निरपेक्ष होना ही उसको देश कालातीत स्थिति का कारण कही जा सकती है। जहाँ तक संवेदन, बौद्धिक–निकर्ष या जीवन–दृष्टि का प्रश्न है, साहित्य अपने निर्माता में ही स्थिति रखता है और इस प्रकार उसके व्यक्तित्व की अंतरंगता में ही ढलता बनता है। अभिव्यक्ति की शैली से लेकर अपने अंतर्निहित सूक्ष्म संकेत तक साहित्य, साहित्यकार के व्यक्तित्व के संस्पर्श से रूपरेखा पाता है।''

हिन्दी रंगमंच

हिन्दी नाटकों के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी रंगमंच की दिशा और दशा का रेखांकन करता महादेवी जी का यह निबंध हिन्दी रंगमंच की विकास यात्रा का संकेत भी देता है। जिसके संदर्भ में वे कहती हैं कि हिन्दी रंगमंच को नाटक की अपेक्षा अधिक संघर्ष और प्रतिकूलताओं का सामना करना पड़ा। परंतु फिर भी जीवन के सर्वांगीण विकास की योजना ने रंगमंच की अनिवार्य आवश्यकता सिद्ध कर दी है। वे लिखती हैं कि ''रंगमंच कोई गढ़ा ढला हुआ साँचा नहीं है, जिसमें नाटक को दबकर विकृत हो जाना पड़ेगा। वह तो नाटक की निराकार आत्मा को रूपरंगों में साकारता देने का साधन मात्र है। हर सीमा के समक्ष असीमता की असंख्य संभावनाएँ हैं, अतः नाटक के साथ ही रंगमंच की संकीर्ण और कठिन रेखायें विस्तृत और लचीली हो सकती हैं, उससे विच्छिन्न होकर नहीं।''

वे व्यवसायिक रंगमंच को नगण्य और अव्यवसायिक रंगमंच को अनिश्चित मानती हैं। फिर भी उसके महत्व को सापेक्षिक बनाते हुए वे लिखती हैं कि रंगमंच एक महत्वपूर्ण शिल्प है जो नाट्यकला के विकास के लिए आवश्यक है। रूपक, अभिनेतावर्ग तथा दर्शक तीनों को रंगमंच के लिए आवश्यक मानते हुए वे रंगमंच के विकास के संदर्भ में वे कहती हैं कि ''रंगमंच की कला के विकास के लिए ऐसी रंगशालायें अनिवार्यतः आवश्यक हैं, जो केवल अभिनय को ध्यान में रखकर बनाई गई हों और सब नाट्यमंडलियों को नाममात्र के; व्यय पर सुलभ हो सकें। नाट्यशास्त्र तथा रंगमंच संबंधी साहित्य का निर्माण और प्रकाशन भी रंगमंच के विकास को स्वस्थ दिशा दे सकेगा।''

हमारे वैज्ञानिक युग की समस्या

आज के इस वैज्ञानिक युग में जहाँ तथ्य और तर्क महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं वहीं भावनाएँ और संवेदना गौण होती दिखाई दे रही है। इसी तथ्य के आधार पर महादेवी जी का यह निबंध हमारी सांस्कृतिक विशेशताओं का महत्व बताता है। जिसमें उन्होंने हमारी संस्कृति की व्यक्ति और समाज से निकटता को बताते हुए कहा है कि किसी भी समीपता के दो परिणाम होते हैं पहली समीपता जो आत्मीयता के कारण होती है उसमें किसी के प्रति त्याग भी भावना महत्वपूर्ण होती है जबकि दुराभाव से प्रेरित समीपता में दूसरे के बचाव के समस्त साधन नष्ट कर देने की दुर्भावना होती है। वे उदाहरण देते हुए कहती हैं कि

''हमारे मस्तक पर आकाश में उमड़ता हुआ बादल और उमड़ता हुआ बमवर्षक यान दोनों ही हमारे समीप के जायेंगे, परंतु स्थिति एक होने पर भी परिणाम विरुद्ध ही रहेंगे। जिनके साथ मन शंकारहित नहीं हो सकता, उनकी निकटता संघर्श की जननी है। इसी से आज के युग में मनुष्य पास है, किंतु मनुष्य का शंकाकुल मन पास आने वालों से दूर होता जा रहा है। स्वस्थ आदान–प्रदान के लिए मनों की निकटता पहली आवश्यकता है।''

इसीलिए हमारे देश के अतीत के महामनाओं ने हमारी समष्टिगत चेतना को व्यक्ति मात्र के अपनेपन से गूँथ कर इतने पास रख दिया कि वह व्यश्टि में भी समष्टि का सामीप्य प्रदान करती थी। महादेवी जी कहती हैं कि हमारे अतीत के चिंतकों ने हमारी एकता के सूत्र को भंग ने कर देने की आशंका से इसे बहुत मजबूत बनाने का भरसक प्रयास किया और देश के कोने–कोने में बिखरे जीवन को निकट लाने के साधनों की खोज की। उन्होंने ऐसे तीर्थ खोजे जिनकी छाया में वर्ण, देश, भाषा आदि की सीमाएँ समाप्त हो जाती हैं। उन्होंने ऐसी यात्राएँ की तो देश के किसी खंड को अपरिचित नहीं रहने देतीं। जिस प्रकार अच्छी तरह बुने हुए वस्त्र में उसका ताना–बाना व्यक्त नहीं होता वैसे ही हमारी सांस्कृतिक ऐकता भी प्रत्यक्ष नहीं है। एकता की राजनीतिक और सामाजिक इकाइयों की भूमिका को लेकर वे कहती हैं कि

''युगों के उपरांत हमारा देश एक राजनीतिक इकाई बन सका है, परंतु आज यदि हम इसे सांस्कृतिक इकाई का पर्याय मान लें, तो यह हमारी भ्रांति ही होगी। कारण स्पष्ट है। राजनीतिक इकाई जीवन की बाह्य व्यवस्था से संबंध रखती है, अतः वह बल से भी बनाई जा सकती है। परंतु सांस्कृतिक इकाई आत्मा की उसक मुक्तावस्था में बनती है, जिसमें मनुष्य भेदों से अभेद की ओर, अनेकता से ऐकता की ओर चलता है।''

निष्कर्ष

लेखकों के बारे में अपनी व्यक्तिगत राय देते हुए महादेवी जी कहती हैं कि लेखकों के पास शुद्ध साहित्यिक जीवन व्यतीत करने के लिए सीमित साधन ही होते हैं। पत्रकारिता की वृद्धि के लिए लेखकों का सहयोग अपेक्षित होता है किंतु लेखकों को सहायता या सुविधा देना कभी अपेक्षित नहीं माना जाता। यदि ऐसा होता तो न जाने कितने ही श्रेष्ठ लेखक हमारे साहित्य की अमूल्य निधि बनकर उभर आये होते।

आगे हिन्दी भाषा की वृद्धि को लक्ष्य करते हुए वे लिखती हैं कि विभिन्न प्रकार के पत्रों को हिन्दी में अपनी गुणवत्ता सिद्ध करना होगा जिससे आत्मबोध, उत्तम विचार पद्धति, विश्वसनीयता तथा राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करना उनका लक्ष्य बन सके। पत्रकारिता व्यवसाय की व्यापारिक प्रवृत्ति की ओर चिंता व्यक्त करते हुए वे इस व्यवसाय की नैतिकता के प्रति प्रतिबद्धता को आवश्यक मानती हैं। निबंध के अंतिम पड़ाव पर वे पाठकों

को लक्ष्य करते हुए उसे ऐसा विक्षिप्त मानव मानती हैं जिसे देखकर उनको ''सैम्सन की कथा का स्मरण हो आता है जो केश काट दिये जाने पर अशक्त हो गया था और केश उग आने पर जिसने अपने विरोधियों पर मंदिर ढहा दिया था। विचारों के अभाव में हमारा पाठक भी दुर्बल है, अतः उस पर अत्याचार सहज है। जिस दिन वह प्रबुद्ध होगा उसकी अपराजेय विद्युत शक्ति से सभी शरीर की श्रृंखलायें तथा मन के कुण्ठा जनित बंधन जल जायेंगे। तब उपचारक तथा रोगी की भूमिकाओं में भी परिर्वतन अनिवार्य है।''

संदर्भ

1. हमारे वैज्ञानिक युग की समस्या, महादेवी साहित्य, भाग–1, संपादक– ओंकार शरद, प्रथम संस्करण–1969, सेतु प्रकाशन, झाँसी.
2. भाषा का प्रश्न, महादेवी साहित्य, भाग–1, संपादक–ओंकार शरद, प्रथम संस्करण–1969, सेतु प्रकाशन, झाँसी.
3. मानव विकास : परंपरा के संदर्भ में, महादेवी साहित्य, भाग–1, संपादक–ओंकार शरद, प्रथम संस्करण–1969, सेतु प्रकाशन, झाँसी.
4. संस्कृति और प्राकृतिक परिवेश, महादेवी साहित्य, भाग–1, संपादक–ओंकार शरद, प्रथम संस्करण–1969, सेतु प्रकाशन, झाँसी.
5. भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि, महादेवी साहित्य, भाग–1, संपादक–ओंकार शरद, प्रथम संस्करण–1969, सेतु प्रकाशन, झाँसी.
6. प्राकृतिक परिवेश और राष्ट्रीयता, महादेवी साहित्य, भाग–1, संपादक–ओंकार शरद, प्रथम संस्करण–1969, सेतु प्रकाशन, झाँसी.
7. साहित्यकारः व्यक्ति और समश्टि, महादेवी साहित्य, भाग–1, संपादक–ओंकार शरद, प्रथम संस्करण–1969, सेतु प्रकाशन, झाँसी.
8. हिन्दी रंगमंच, महादेवी साहित्य, भाग–1, संपादक– ओंकार शरद, प्रथम संस्करण–1969, सेतु प्रकाशन, झाँसी.
9. हमारे वैज्ञानिक युग की समस्या, महादेवी साहित्य, भाग–1, संपादक– ओंकार शरद, प्रथम संस्करण–1969, सेतु प्रकाशन, झाँसी
10. हिन्दी पत्र–जगतः एक दृष्टि, महादेवी साहित्य, भाग–1, संपादक–ओंकार शरद, प्रथम संस्करण–1969, सेतु प्रकाशन, झाँसी.